राजस्थानी नीतिकाव्य में परिवार विषयक नीति तत्त्व : एक विवेचन

[1]सुधा शर्मा
[1]शोधार्थी
[1]हिन्दी विभाग
[1]ज. रा. ना. राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय), उदयपुर (राज.), भारत

सारांश : 'नीति' से कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान तथा करणीय–अकरणीय आचरण का बोध होता है। नीतिकाव्य व्यक्ति, परिवार और समाज को अनुचित मार्ग से उचित मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है तथा दुविधापूर्ण परिस्थिति में प्रकाशस्तम्भ की भाँति मार्गदर्शन करता है। राजस्थान के जन–जीवन में नीतिपरक आचरण का विशेष महत्त्व है। नीतिपरायण समाज की परिकल्पना से प्रेरित राजस्थानी नीतिकाव्य अनेक नीति–मुक्ता–मणियों से आलोकित है। इस नीतिकाव्य में वीरोचित परम्पराओं के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं, परस्पर भाईचारे और प्रेम का अप्रतिम योग दृष्टिगत होता है। राजस्थानी नीतिकाव्य में परिवार को मनुष्य जीवन की महत्त्वपूर्ण धुरी माना गया है। कुल–व्यवहार में कुशलता जीवन को सफल और सुखमय बनाती है। इस कारण नीतिकार कवियों ने परिवार विषयक नीति तत्त्वों पर गहन चिन्तन कर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस विषय की उपादेयता से प्रेरित इस शोधपत्र में राजस्थानी नीतिकाव्य के परिवार विषयक नीति तत्त्वों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो एक नवीन प्रयास है।

मूल शब्द **- नीति, नीतिकाव्य, नीति तत्त्व, राजस्थानी नीतिकाव्य, परिवार विषयक नीति**

1. प्रस्तावना – 'नीति' से कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का ज्ञान तथा करणीय–अकरणीय आचरण का बोध होता है। नीतिकाव्य व्यक्ति, परिवार और समाज को अनुचित मार्ग से उचित मार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है तथा दुविधापूर्ण परिस्थिति में प्रकाशस्तम्भ की भाँति मार्गदर्शन करता है। इस कारण नीतिकाव्य लोकजीवन में घुलमिल गया है। राजस्थान के जन–जीवन में नीतिपरक आचरण का विशेष महत्त्व है। यहाँ पर मान्यता है कि नीति ही सच्चा धर्म है, नीति ही सच्चा जीवन है और नीति के बिना जीवन निरर्थक है।

राजस्थानी नीतिकाव्य की अपनी उज्ज्वल परम्परा रही है। नीतिपरायण समाज की परिकल्पना से प्रेरित राजस्थानी नीतिकाव्य अनेक नीति–मुक्ता–मणियों से आलोकित है। इस नीतिकाव्य में वीरोचित परम्पराओं के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं, परस्पर भाईचारे और प्रेम का अप्रतिम योग दृष्टिगत होता है। इस मरुभूमि में जन्मे कर्त्तव्यनिष्ठ सपूतों की वीरता की कोई समता नहीं। इसके कण–कण की रक्षा हेतु इन वीरों ने सौ–सौ शीश निछावर किए हैं। यद्यपि यहाँ न तो केसर उत्पन्न होती है और न ही हीरे आदि मूल्यवान रत्न, तथापि यह धरती ऐसे वीरों को जन्म देती है जो अपना सिर कटने के उपरान्त भी हाथ में तलवार लिए युद्ध करते रहते हैं –

केसर नह निपजै अठै, नह हीरा निपजंत।
सिर कटियां खग सांमणा, इण धरती उपजंत।।[1]

इसी के साथ ही राजस्थान की माटी में उपजी पारस्परिक प्रेम की परम्परा भी प्रशंसनीय है, जिसे कवि राजेन्द्र स्वर्णकार ने अपनी रचना **'आलूंयूं मरुधर देश री'** में वायु को सम्बोधित इस अनूठे दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया है –

बायरिया ! रजथान जा, ल्यादै थोड़ी रेत।
जावूं जठै बिखेरद्यूं, अर निपज्यादूंयूं हेत।।[2]

निश्चय ही राजस्थानी नीतिकाव्य जीवन–मूल्यों की रक्षा और निर्वाह का अमिट लेख है। यह जीवन के उदात्त मूल्यों का काव्य है और इसके रचयिताओं ने जीवन के विविध क्षेत्रों से संबंधित अपने अनुभूत ज्ञान को संक्षेप में, अत्यन्त सहज तथा सरल रूप में अभिव्यक्त किया है।

राजस्थानी नीतिकाव्य में परिवार को मनुष्य जीवन की महत्त्वपूर्ण धुरी माना गया है। प्रत्येक मनुष्य को सर्वप्रथम अपने परिवार के सदस्यों – माता–पिता, स्त्री, पुत्र–पुत्री, भाई–बहिन आदि के साथ व्यवहार करना पड़ता है। कुल–व्यवहार में कुशलता जीवन को सफल और सुखमय बनाती है। इस कारण नीतिकार कवियों ने परिवार विषयक नीति तत्त्वों पर गहन चिन्तन कर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इस विषय की उपादेयता से प्रेरित इस शोधपत्र में राजस्थानी नीतिकाव्य के परिवार विषयक नीति तत्त्वों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो एक नवीन प्रयास है।

2. परिवार विषयक नीति तत्त्व – राजस्थानी नीति कवियों ने परिवार, माता–पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन आदि परिवार विषयक तत्त्वों पर अपने नीतिगत विचार व्यक्त किए हैं, जिनका यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

2.1 परिवार

राजस्थानी नीतिकाव्य में परिवार (कुल) के सम्मान एवं नैतिक मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसी कारण परिवार के प्रत्येक सदस्य से ऐसे आचरण की अपेक्षा का जाती है जो नीति सम्मत हो।

कवि भानसिंह शेखावत 'मरुधर' अपनी रचना **'भायला रा सोरठा'** में कहते हैं – जिस प्रकार मटके की मिट्टी की सुगंध उसके पानी में आती रहती है, उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव से उसके कुल एवं मर्यादा का ज्ञान हो जाता है –

जैंया मटकां माट, सौरम मांटी री रहै।
कुळ मरजादा, मांठ, रहै मिनख में भायला।।[3]

कवि महावीर प्रसाद जोशी की रचना **'दूदिये रा दूहा'** के एक नीतिवचनानुसार मनुष्य को अपने कुल की आन कभी नहीं छोड़नी चाहिए –

जीव भलां ही जाय, कुळ री आन न छोडणी।
जेवड़ियां बळ ज्याय, दूर न हो बळ दूदिया।।[4]

नीति कवियों के मतानुसार उच्च कुल का व्यक्ति कभी भी नीच कार्य नहीं करता –

ऊंचै कुळ रो आदमी, करै न नीचो काम।
लू चालै ना वसंत में, पड़ै न करड़ी घाम।।[5]

कवि भौमराज भंबीरू 'मंगळ' की रचना **'मूंघा मोती'** के एक नीतिवचनानुसार – जिन परिवारों में मेल होता है, परस्पर झगड़ा नहीं होता, ऐसे घर स्वर्ग तुल्य होते हैं तथा वहाँ समृद्धि का वास होता है।[6]

कवि शाह मोहनराज अपनी रचना **'चकरिया रा सोरठा'** में कहते हैं कि परस्पर वैर भाव होने से बड़े से बड़े परिवार भी नष्ट हो जाते हैं –

फोकट में कर फूट, कौरव पांडव कट मरया।
खानदान ग्या खूट, चोखा चोखा चकरिया।।[7]

कवि डॉ. मनोहर शर्मा की रचना **'राजस्थानी गूँज'** में कहा गया है कि अनेक बार धन के कारण परिवार के सदस्यों में मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाता है और वे अपनी साख खो बैठते हैं –

भाई, बेटो, नार
माय, बाप, सम्बन्धियाँ
धन उपजावै खार
साख भुलादे! मंजुला।[8]

राजस्थानी नीतिकारों के अनुसार परिवार को सदैव अपनी आय के अनुसार ही व्यय करना चाहिए। जिस परिवार में आय से अधिक व्यय होता है उसका सम्मान नहीं रह पाता –

आगळ थोड़ी, खरच बहु, जिण घर दीसइ अेम।
तिण कुटुंब री माल कह, महमा रहसी केम ?[9]

कवि चतुरसिंह बावजी ने अपनी रचना **'चतुर चिन्तामणि'** में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नीतिवचन कहा है कि बिना सम्मानजनक आमन्त्रण के कभी भी दूसरे परिवार के घर में नहीं जाना चाहिए –

पर घर पग नी मेळणों, वना मान मनवार।
अंजन आवै देख'नै, सिंगल रो सतकार।।[10]

कवि गोविन्द सिंह गहलोत अपनी रचना **'सुण भंवरा'** में, आज की पीढ़ी के परिवारों में बिखराव और घटती संवेदना की व्यथा को व्यक्त करते हुए इंगित करते हैं कि इसी कारण आज देश और समाज के विकास का आधार खिसक रहा है –

भंवरा बण्या घर बडा, छोटा होगा परिवार।
देश समाज विकास रो, खिसक रह्यो आधार।।[11]

इस प्रकार नीति कवियों द्वारा निर्देशित परिवार संबंधी अनेक नीतिवचन दृष्टिगत होते हैं।

2.2 माता–पिता

परिवार में सर्वप्रथम स्थान माता–पिता का होता है। शास्त्रों में माता–पिता को गुरु का स्थान दिया गया है –

मात पिता गुर आपणां, पाछै हर रो नांव।[12]

कवि नागरमल सहल ने अपनी रचना **'सहल सतसई'** में माता–पिता की महत्ता का बखान इस प्रकार किया गया है –

सौ गुरवां बढ बाप गिण
सहस्त्र बाप सूं माय
नागर वपन बीज करै
जद इ पौध लहराय।[13]

कवि ठा. उम्मेदसिंह 'ऊम' ने अपनी रचना **'ऊमा रा आखर (नीति–शतक)'** में माता–पिता को देवतुल्य माना है।[14] कवियों का यह भी मत है कि संतान के लिए माता–पिता की छत्र–छाया अनेकानेक कष्टों का शमन करने वाली होती है –

छत्र करै ज्यों छंहडी, तुरत हरै बहु ताप।
छोरू नै गुणकार छै, बूढा ही मां–बाप।।[15]

माता–पिता में भी माता का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। बड़े–बड़े सिद्ध पुरुषों, मनीषियों और ज्ञानियों ने भी माता के चरण जल को पावन माना है।[16]
वीर माता अपने पुत्र को बाल्यावस्था में ही मातृभूमि की रक्षा हेतु सदैव उद्यत रहने का पाठ पढ़ा देती है –

माता बाळ भुजा पर राख्यो।
भार सहंती बोली यूं ।।
भारत मा रो भार उतारजे।
मत न भार बढ़ाइजे थूं।।[17]

कवि ताऊ शेखावाटी ने अपनी रचना **'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)'** में माँ की ममता को अमूल्य बताया है –

तिगुणो सोनो तोल, रोज दियाँ ईं कम पड़ै।
मायड़–ममता मोल, बता सक्यो कुण, बावळा।।[18]

मनुष्य संसार में सब के ऋण से उऋण हो सकता है, पर माता के ऋण से नहीं –

जननी रा रिण हूंत जन, ऊरण हुवै न अेक।[19]

जो विमल भाव रखकर माता को तीर्थ तुल्य मानते हैं, ऐसे पुत्रों को जन्म देकर माता सुख मानती है।[20] इसके विपरीत संसार चक्र में पड़कर माता की सेवा नहीं करने वाली संतान की राजस्थानी कवि भानसिंह शेखावत 'मरुधर' ने भर्त्सना की है –

जग रो घारो छोड़, मा री सेवा नीं करै।
नहीं नरक में ठोड़, अस्ये मिनख नैं भायला।।[21]

कवि के अनुसार – माता–पिता की सेवा से घर में ही काशी–प्रयाग आदि तीर्थों का फल प्राप्त हो जाता है –

धन मिनखां रा भाग, मायत सेवा में मिलै।
घर कासी परयाग, मायत तीरथ भायला।।[22]

कवियों ने सार रूप में कहा है कि जिस परिवार में माता–पिता के प्रति श्रद्धा भाव से सेवा–पूजा की जाती है, वह परिवार उन्नति एवं सुख प्राप्त करता है।[23]

2.3 स्त्री

स्त्री का गृहिणी रूप महत्त्वपूर्ण है। गृहकार्य का पूरा उत्तरदायित्व गृहिणी पर होता है, इसीलिए नीतिकाव्य में स्त्री के गृहिणी रूप का गुणगान किया गया है। राजस्थानी नीति कवि कहते हैं कि गृहिणी के बिना गृह फीका लगता है –

ऊंचो घणो अवास, अळगा सूं दीसै अजब।
घरणी बिन घरवास, फीको लागै फूसिया।।[24]

उनके मतानुसार गृहिणी के बिना घर की व्यवस्था सम्भव नहीं है –

कुण भोजन त्यारी करै, कै कुण जीमौ कंत।
कुण हस हस बातां करै, भांमा बिन भगवंत।।[25]

नीति कवियों ने स्त्री को सुख का कारण स्वीकार किया है –

करम करी धन पाइयै, धन पायां सुख होय।
सुख रो कारण कामणी, तै विन कांइ न होय।।[26]

गृहिणी रूप में कवियों ने उसके तीन गुणों का विशेषतः उल्लेख किया है –

तिरियां! थां में तीन गुण, ओगुण और घणेह।
घर–मंडण, मंगळ–करण, पूत सपूत जणेह।।[27]

कवि भानसिंह शेखावत 'मरुधर' अपनी रचना **'भायला रा सोरठा'** में कहते हैं कि सुलक्षणा स्त्री प्रेम की पावन मूर्ति होती है। उसके नेत्रों से बरसता हुआ प्रेम, धरती पर बरसते मेघ और व्यापार में बरसते धन के समान सुखकर लगता है –

धरती ऊपर मेह, बीणज में धन बरसतो।
नारी नैणा नेह, भलो बरसतो, भायला।।[28]

ताऊ शेखावाटी की रचना **'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)'** के एक नीतिवचनानुसार – अवगुणों से युक्त नारी यदि कंचन के समान सुन्दर है, तो भी वह किस काम की –

ओगणगारी नार, कंचन सी के काम की।
धार देख तलवार, मूठ निरख मत, बावळा।।[29]

कवियों का स्पष्ट मत है कि सुलक्षणा स्त्री अपने गृहस्थ–कर्त्तव्यों का पालन करते हुए माता–पिता और पति, दोनों के घरों में उजाला कर देती है –

चन्द उजाळे एक पख बीजे पख अंधियार।
बळ दोय पख उज़ालिया चन्द्रमुखी बलिहार।।[30]

नीति कवियों के मतानुसार स्त्री के अपमान से सारा वंश और देश समाप्त हो जाते हैं –

नारी रै अपमान सूं, गयो बंस अरू देस।
कौरव सारा कट गया, अधरम सूं हुक्मेश।।[31]

इस प्रकार राजस्थानी नीति कवियों ने स्त्री की परिवार में महत्त्वपूर्ण भूमिका पर अपने अनुभवजन्य नीतिगत विचार व्यक्त किए हैं।

2.4 पुत्र

पुत्र को परिवार का दीपक कहा गया है। उस घर को घोर अंधकार से ग्रस्त माना गया है, जिसमें पुत्र का अभाव हो –

चौसठ दीवा हे सखि, बारा रवि तपंत।
घोर अंधारो तिण घरै, जिण घर सुत न रमंत।।[32]

नीति कवियों का मत है कि यदि मृग नक्षत्र में हवा नहीं चली, आर्द्रा नक्षत्र में पानी नहीं बरसा और यौवन अवस्था में पुत्र उत्पन्न नहीं किया तो ये तीनों व्यर्थ ही हुए।[33]

'भायला रा सोरठा' में व्यक्त एक नीतिवचनानुसार पुत्र को जैसी शिक्षा माता–पिता द्वारा बाल्यावस्था में दी जाती है, वह वैसा ही बन जाता है –

जस्या पढासी पाठ, टाबर बै ही सीख सी।
टाबर काचो काठ, कोर मांडणा भायला।।[34]

सुपुत्र की प्रशंसा करते हुए कवियों ने उसके लक्षण इस प्रकार व्यक्त किए हैं –

गुरुजन सेवै तज गरब, कम्मावै घर कूंत।
निबळां नै ले निरवहै, सांचा तिकै सपूत।।[35]

कवि जननी को सम्बोधित कर, सुपुत्र को ही जन्म देने का निर्देश करते हैं –

जननी ! अेहा पूत जण, कुळनायक रणधीर।
मुदित न संपद पाय कै, रुदित न विपदा पीर।।[36]

अपनी भूमि की रक्षा करना सुपुत्र का कर्त्तव्य माना गया है। कवियों के मतानुसार ऐसे पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ और उसकी मृत्यु से क्या हानि, जिसके रहते पितृभूमि शत्रु द्वारा पददलित (पराधीन) हो –

पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पीकी भुंहडी चंप्पिज्जइ अवरेण।।[37]

राजस्थानी नीतिकाव्य में पिता के बैर का प्रतिशोध लेना पुत्र का कर्त्तव्य माना गया है। ऐसा न करने वाले को कुपुत्र माना गया है –

जननी जणै कपूत मत, चंगो जोबन खोय।
कै जण बैर–विहंडणो, कै कुलमंडण होय।।[38]

कुल में कुपुत्र के जन्म से वंश और देश का नाश होता है।[39] कवि भानसिंह शेखावत 'मरुधर' के मतानुसार अनेक कुपुत्रों का जन्म, कुल में बिखराव का कारण बनता है, जब कि एक ही सुपुत्र कुल को उबारने में सक्षम होता है।[40] कुपुत्र परिवार के लिए इतना दुःखदायी होता है कि न तो उसे रखने से घर की शोभा बढ़ती है और न ही उसे दूर किया जा सकता है –

कुल कपूत छठि आंगळी, अजा कंठ थण दोय।
राख्यां तो सोभा नहीं, दूर कियां दुख होय।।[41]

कच्चे सूत को सुलझाना फिर भी सम्भव है, पर कुल को लज्जित करने वाले कुपुत्र को सुधारना असम्भव है।[42] कवि ठा. उम्मेदसिंह 'ऊम' का मत है कि कलयुग के प्रभाव से आज पुत्र माता–पिता की सेवा नहीं करते तथा घर–घर में पिता–पुत्र के मध्य मनमुटाव दिखाई देता है।[43]

अतः कवियों ने अनेक कुपुत्रों की अपेक्षा एक सुपुत्र होना श्रेष्ठ माना है।

2.5 पुत्री

परम्परावादी राजस्थानी नीतिकार कवियों का ध्यान पुत्री या कन्या का ओर कम गया है। एक ओर उन्होंने पुत्र के बिना घर और परिवार को सूना माना है, तो दूसरी ओर एक पुत्री का होना भी अच्छा नहीं माना –

देणो भलो न बापरो, बेटी भली न अेक।[44]

सम्भवतः इसका कारण यह रहा होगा कि पुत्री के पिता को दूसरों के आगे झुकना पड़ता है।

कवियों ने कन्या को पराया धन कहा है।[45]

कवि भानसिंह शेखावत 'मरुधर' ने अपनी रचना **'भायला रा सोरठा'** में कन्या के घर–घर फिरने को उचित नहीं माना है –

दरखत दरिया तीर, पर घर फिरती डावड़ी।
आं में किण रो सीर, कद बह ज्यावै भायला।।[46]

नीतिकारों ने सयानी पुत्री को अविवाहित रखना अनुचित माना है। उसका विवाह उचित अवस्था में देखभाल कर सम्पन्न कर देना चाहिए।[47] कई पिता रुपये लेकर पुत्री को बेचने जैसा निन्दनीय कार्य करते हैं, इसकी कवियों ने तीव्र निन्दा की है।[48]

नीतिकार कवियों ने बाल विवाह[49] तथा वृद्ध विवाह[50] दोनों की भर्त्सना की है। उन्होंने दहेज प्रथा की भी तीव्र निन्दा की है तथा कहा है कि दुल्हन स्वयं दहेज है। वह सेवा, सुख, तप और त्याग के वातावरण से पूरे घर और परिवार को सुवासित करने वाली होती है –

क्यूँ दहेज मांगो नरां, दुलहिन आप दहेज।
सेवा, सुख, तप त्याग री, सदा सजावै सेज।।[51]

आधुनिक राजस्थानी कवियों ने *'बेटी बचाओ और बेटी पढ़ाओ'* का प्रबल समर्थन किया है –

बेटी ने बचाओ अर बेटी ने पढ़ाओ,
देश ने भ्रूणहत्या सूं मुगत कराओ!
हे माणस, देश समाज मं यो बिचार फैलाओ,
लोगां मं बेटी नै पढ़ाने–लिखाणे रो ब्यौहार जगाओ![52]

वास्तव में यदि बेटी को पढ़ाने–लिखाने में समाज का उचित सहारा मिले, तो बेटी बेटे से पीछे कभी नहीं रह सकती –

छोरां सूं लारै कदे न रैवां
जै समाजड़ो देवै स्हारो
मायड़ आज बता दे मंनै
क्यू छोरो–छोरी सूं प्यारो?[53]

इस प्रकार राजस्थानी नीति कवियों ने भ्रूणहत्या, बाल विवाह, वृद्ध विवाह और दहेज प्रथा का प्रबल विरोध किया है तथा बालिका शिक्षा का समर्थन किया है। उन्होंने समाज में बेटी और बेटे के मध्य भेद–भाव को समाप्त करने का आह्वान भी किया है।

2.6 भाई

एक ही पिता के दो पुत्रों में परस्पर संबंध भाई का होता है। कवि भौमराज भंबीरू 'मंगळ' की रचना **'मूंघा मोती'** के एक नीतिवचनानुसार – जिन परिवारों में भाईयों में मेल होता है, स्त्रियों में परस्पर झगड़ा नहीं होता, उनके घर स्वर्ग तुल्य होते हैं तथा वहाँ लक्ष्मी का वास होता है –

भायाँ भेळप होय, नार्‌याँ राड़ भी हो नहीं।
सुरग जियाँ घर होय, मंगळ घर लिछमी बसै।।[54]

राजस्थानी नीतिकार कवियों ने कहा है कि अपने भाईयों के साथ लड़ाई से जग–हँसाई होती है, वंश का नाश होता है और अपने हित की हानि होती है।[55] कलयुग के प्रभाव से आज भाईयों में परस्पर स्नेह लुप्त हो रहा है। इस कारण संसार के कष्टों में वृद्धि हो रही है –

बद्‌यो संबंध छत्तीस रो
कुळजुग रो परताप
नागर लोप भायप हुई
जग सहि जिण सूं ताप।।[56]

लोगों की चुगली भाईयों में परस्पर वैर बढ़ाने का कार्य करती है। कवियों की दृष्टि में ऐसी स्थिति में विधाता उनके भाग्य में विपत्ति लिख देते हैं –

लोग चुगल कानाँ लग्या, घूघू बोल्यो गेह।
भायाँसूँ भेळप नहीं, विपत लिखी विधि तेह।।[57]

इस प्रकार नीतिकार कवियों ने पारिवारिक उन्नति एवं सुख–शान्ति के लिए भाईयों के साथ मधुर संबंध बनाये रखने का नीतिगत सन्देश दिया है।

2.7 बहिन

राजस्थानी काव्य में नारी का कोई पक्ष वीरता से विहीन नहीं मिलता। रक्षा–बंधन के पर्व पर बहिन द्वारा अपने वीर भाई से यह माँग कितनी प्रेरणास्पद है –

काटो बंधन देशरा या मन रो उद्‌गार।
हमें लाज हिन्दवाण की भुजां तिहारै भार।।[58]

वह रण में प्रस्थान करते अपने भाई से कहती है – हे भैया! हमारी भाभी को तुम्हारा यह महल मुबारिक हो, परन्तु शत्रु का झंडा तो छीनकर तुम मुझे ही लाकर देना, उस पर मेरा ही अधिकार है –

भाभी रै रीजो अमर मैल नव खंडोह।
मन लाने दीजो अरे वैरी रो झंडोह।।[59]

इस प्रकार राजस्थानी नीतिकाव्य में बहिन को वीरता एवं उच्च आदर्श की मूर्ति के रूप में प्रशंसित किया गया है।

2.8 अन्य

परिवार के अन्य सम्बन्धियों के बारे में भी यत्र–तत्र नैतिक उद्‌गार व्यक्त किए गए हैं। परिवार में सभी सदस्यों का महत्त्व है। पारिवारिक सम्बन्धों में असन्तुलन न हो, इस लक्ष्य से व्यंग्यात्मक रूप में कथित दो उदाहरण दृष्टव्य है –

प्यारो लागै पीव, पी स्यूँ प्यारा पूतड़ा।
जी स्यूँ प्यारो जीव, जँव्वाई ह्वै, बावळा।।[60]
पोता–बहु की राबड़ी, दोहिता–बहु की खीर।
मीठी लागै राबड़ी, खारी लागै खीर।।[61]

इस प्रकार राजस्थानी नीति कवियों ने परिवार संबंधी विविध नीति तत्त्वों पर अपने अनुभूत ज्ञान को सरल एवं सहज रूप में प्रस्तुत कर व्यक्ति, परिवार एवं समाज का मार्गदर्शन किया है।

3. निष्कर्ष – राजस्थानी नीतिकाव्य में परिवार विषयक नीति तत्त्वों के विवेचनात्मक अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि इन रचनाओं में नीति कवियों की कार्यकुशलता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि, सहज सम्प्रेषणीयता तथा प्रभूत श्रम–साधना स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुई है। कवियों ने अपनी सुघड़ एवं लघु रचनाओं में बिन्दु में सिन्धु समेटने का प्रयास किया है। इन कवियों का अभिमत है कि व्यक्ति को अपने कुल की आन कभी नहीं छोड़नी चाहिए। परिवार में परस्पर मेल से ही सुख–समृद्धि आती है। आज की पीढ़ी के परिवारों में बिखराव और घटती संवेदना पर कवियों ने चिन्ता प्रकट की है। इन कवियों के मतानुसार जिस परिवार में माता–पिता की श्रद्धा भाव से सेवा और पूजा होती है, वह परिवार उन्नति और सुख प्राप्त करता है। स्त्री की परिवार में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वह अपने समस्त कर्त्तव्यों का पालन करते हुए माता–पिता और पति, दोनों के घरों में उजाला कर देती है। वह परिवार में सुख का कारण होती है, इसलिए उसका अनादर नहीं होना चाहिए। कवियों ने सुपुत्र के गुणों एवं कर्त्तव्यों को इंगित किया है तथा अनेक कुपुत्रों की अपेक्षा एक सुपुत्र का होना श्रेष्ठ माना है। उन्होंने बालिका शिक्षा का समर्थन किया है तथा समाज में बेटे–बेटी के मध्य भेद–भाव को समाप्त करने का आह्वान किया है। इसके साथ ही उन्होंने भ्रूण हत्या, बाल विवाह, वृद्ध विवाह तथा दहेज प्रथा का प्रबल विरोध किया है। उन्होंने पारिवारिक उन्नति एवं सुख–शान्ति के लिए भाईयों के साथ मधुर संबंध बनाये रखने का नीतिगत सन्देश दिया है। कवियों ने बहिन को वीरता एवं उच्च आदर्श की मूर्ति के रूप में प्रशंसित किया है। उन्होंने पारिवारिक संबंधों में सन्तुलन बनाये रखने पर बल दिया है। इस प्रकार इन नीति कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने उदात्त भावों को समर्थ एवं सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। निश्चय ही इस नीतिकाव्य की सृजनात्मक उपादेयता एवं रचनात्मक सोद्देश्यता इन कवियों की कालजयी कीर्त्ति का अक्षय स्रोत है।

सन्दर्भ :

1. जोधा, समुद्रसिंह, 2009, 'राजस्थानी दोहावली', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 45/202।
2. स्वर्णकार, राजेन्द्र, 2005, 'ओल्‌यूं मरुधर देश री', जागती जोत, बरस 34, अंक 8–9, नवम्बर–दिसम्बर 2005, पृ. 70।
3. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 38।
4. दूदिया, महावीर प्रसाद जोशी, 2008, शेखावाटी बोध, फरवरी 2008, पृ. 36।
5. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 9/110।
6. 'मंगळ', भौमराज भंबीरू, 1944, 'मूंघा मोती', (प्रकाशक) पी. आर. अग्रवाल, राजगढ़ (बीकानेर स्टेट), पृ. 32/126।
7. शाह मोहनराज, 2007, 'चकरिया रा सोरठा', (सं.) धनसिंह राजपुरोहित, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 71/266।
8. शर्मा, डॉ. मनोहर, वि. सं. 2016, 'राजस्थानी गूँज', राजस्थान प्रकाशन, कलकत्ता, पृ. 41/104।
9. राजस्थानी गंगा, वर्ष 3, अंक 1, जनवरी–मार्च 1987, पृ. 35/504।
10. चतुरसिंह, 2000, 'चतुर चिन्तामणि', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 40/269।
11. गहलोत, गोविन्द सिंह, 2012, 'सुण भंवरा', पृथ्वी प्रकाशन, मंडावा, जागती जोत, बरस 41, अंक 2, मई 2013, पृ. 105 पर उद्‌धृत।
12. जोधा, समुद्रसिंह, 2009, 'राजस्थानी दोहावली', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 186/891।
13. सहल, नागरमल, 1995, 'सहल सतसई', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 131/651।
14. 'ऊम', ठा. उम्मेदसिंह राठौड़, 2004, 'ऊमा रा आखर (नीति–शतक)', शार्दूल स्मृति संस्थान, धौली, भीलवाड़ा (राज.), पृ. 43/53।

15. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 46/661।
16. वही, पृ. 46/663।
17. देवड़ा, हनुवंतसिंह, 1955, 'डिंगल साहित्य में नारी', गुप्ता बुक एजन्सी, दिल्ली, पृ. 25।
18. ताऊ शेखावाटी, 1999, 'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)', रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ. 22/15।
19. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 46/662।
20. वही, पृ. 46/666।
21. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 94।
22. वही, पृ. 72।
23. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 46/669।
24. वही, पृ. 37/525।
25. कविया, शक्तिदान, 2000, 'राजस्थानी दूहा संग्रह', साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. 121/567।
26. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 37/523।
27. वही, पृ. 38/535।
28. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 110।
29. ताऊ शेखावाटी, 1999, 'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)', रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ. 46/63।
30. देवड़ा, हनुवंतसिंह, 1955, 'डिंगल साहित्य में नारी', गुप्ता बुक एजन्सी, दिल्ली, पृ. 54।
31. जोधा, समुद्रसिंह, 2009, 'राजस्थानी दोहावली', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 83/385।
32. चूण्डावत, रानी लक्ष्मीकुमारी, 1997, 'राजस्थान के प्रसिद्ध दोहे सोरठे', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 21/107।
33. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 48/86।
34. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 70।
35. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 41/582।
36. वही, पृ. 42/604।
37. हेमचन्द्राचार्य, 1928, 'प्राकृत व्याकरणम् (सिद्धहेमचन्द्रस्याष्टमोऽध्याय)', 8–4–395, मोतालाल लड्ढा, पूना सिटी, पृ. 160।
38. मनोहर, शंभुसिंह, 1987, 'राजस्थानी रसधारा', श्याम प्रकाशन, जयपुर, पृ. 23 पर उद्धृत।
39. शर्मा, गिरधारीलाल, 1956, 'राजस्थानी दोहावली – भाग 1', साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, पृ. 8/7।
40. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 72।
41. कविया, शक्तिदान, 2000, 'राजस्थानी दूहा संग्रह', साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. 85/209।
42. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 41/592।
43. 'ऊम', ठा. उम्मेदसिंह राठौड़, 2004, 'ऊमा रा आखर (नीति–शतक)', शार्दूल स्मृति संस्थान, धौली, भीलवाड़ा (राज.), पृ. 41/50।
44. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 52/115।
45. ताऊ शेखावाटी, 1999, 'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)', रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ. 50/69।
46. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 15।
47. स्वामी, नरोत्तमदास, 2002, 'राजस्थानी दूहा विहार', राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ. 12/177।
48. केसवा रा सोरठा, 1973, 'राजस्थानी सोरठा संग्रह', (सं.) डॉ. मांगीलाल व्यास 'मयंक', कलम घर प्रकाशन, जोधपुर, पृ. 39/19।
49. शेखावाटी बोध, फरवरी 2008, पृ. 40।
50. केसवा रा सोरठा, 1973, 'राजस्थानी सोरठा संग्रह', (सं.) डॉ. मांगीलाल व्यास 'मयंक', कलम घर प्रकाशन, जोधपुर, पृ. 39/18।
51. भानावत, डॉ. नरेन्द्र, 1986, 'दूहा सतक (राजस्थानी दोहे), श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत् परिषद्, जयपुर, पृ. 29।
52. गोस्वामी, रंजना, 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ', जागती जोत, बरस 45, संयुक्तांक जुलाई 2014–मार्च 2017, पृ. 54।
53. 'ठिमाऊ', रामनिरंजन शर्मा, 2008, 'छोरियां री पुकार', जागती जोत, बरस 37, अंक 4, जुलाई 2008, पृ. 68।
54. 'मंगळ', भौमराज भंबीरू, 1944, 'मूंघा मोती', (प्रकाशक) पी. आर. अग्रवाल, राजगढ़ (बीकानेर स्टेट), पृ. 32/126।
55. 'ऊम', ठा. उम्मेदसिंह राठौड़, 2004, 'ऊमा रा आखर (नीति–शतक)', शार्दूल स्मृति संस्थान, धौली, भीलवाड़ा (राज.), पृ. 29/25।
56. सहल, नागरमल, 1995, 'सहल सतसई', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 126/626।
57. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 46/72।
58. देवड़ा, हनुवंतसिंह, 1955, 'डिंगल साहित्य में नारी', गुप्ता बुक एजन्सी, दिल्ली, पृ. 81।
59. वही, पृ. 82।
60. ताऊ शेखावाटी, 1999, 'सोरठां री सौरम (बावळा रा सोरठा)', रचना प्रकाशन, जयपुर, पृ. 50/70।
61. राजस्थानी गंगा, वर्ष 3, अंक 1, जनवरी–मार्च 1987, पृ. 47/690।